अध्याय

जगदीशचन्द्र माथुर के नाटकों में प्रतिबिम्बित "परम्परा"

भूमिका :

परम्परा और आधुनिकता का घनिष्ट सम्बन्ध है। यद्यपि उन दोनो में सूक्ष्म अंतर है फिर भी दोनों एक दुसरे के पूरक है। बीना परम्परा के आधुनिकता का विकास नही हो सकता। मानव जीवन में परम्परा का कुछ महत्त्व है। परम्परा में कुछ अंश मानव जीवन के लिए उपयुक्त होते है। इन उपयुक्त अंशो को ग्रहण कर ही मानव जीवन की यात्रा चलती है। यह परम्परा गतिशील है और अविछिन्न धारामें बहती रहती है। मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह हमेशा नये की ओर आकर्षित होता है। इसी कारण वह परम्परा के उत्तर अंश के आगे बढता है। प्राचीन काल से चली आई परम्परा को आज का मानव ज्यों का त्यों स्विकार नहीं कर सकता, परम्परा के बीना आधुनिकता का पथ प्रशस्त नहीं हो सकता इसलिए परम्परा का भी मानव-जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

कोई भी साहित्यकार वर्तमान में जीता है लेकिन कभी कभी उसका ध्यान अतीत की ओर भी जाता है। सच्चा साहित्यकार जब अतीत की ओर आकृष्ट होता है तब अतीत के उज्वल या उपयुक्त पक्ष को लेकर वह साहित्य का सृजन करता है। विख्यात समीक्षक टि.एस.इलियट का कहना है कि - आधुनिक साहित्यकार भी अतित की ओर देखा करता है। इलियट ने युरोप का उदाहरण देकर लिखा है कि साहित्यकार का यह दायीत्व नहीं है कि वह केवल अपनी पीढिको ही ध्यान में रखकर लिखे बल्कि साहित्यकार को होमर से लेकर पूरे युराप के साहित्य का साथ ही अपन देश क समग्र साहित्य का इतिहास बोध ध्यान मे रखना पडता है। यह इतिहास बोध कालातीत है और यह युगपथबोध लखक को पारम्पारीक बताता है।[1] डॉ दशरथ ओझा ने "रघुकुलरीति" नाटक की "भूमिका" में लिखा है - "रुस के प्रसिध्द नाटयकारों और नाटय-निर्देशकों की मान्यता है कि परम्परा हमारे पूर्वजों के पुष्ट

कंधो के समान है, जिसपर चढकर ... आज की पीढी पूर्वजो से आगे की सीनरी देख सकती है, छोडकर नही।"[2]

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी भी भारत के अतीत की ओर किसी न किसी रूप में आकृष्ट हुए है। यद्यपि अपने नाटकों की सृजन में उन्होंने इतिहास, पुराण आदि को आधार के रूप में ले लिया है। फिर भी वे अतीत के उज्वल पक्ष को नहीं भूल सके है। इतिहासाश्रित परम्परागत जो उत्तम अंश उन्हें दिखाई पड़ा उसको उन्होंने अपने नाटकों में प्रासंगिक रूप में साकार किया है।

यहाँ उत्तम अंश का मतलब केवल पारम्पारिक सांस्कृतिक, नैतिक विधान नही है बल्कि राजनीति जैसे क्षेत्र में षडयंत्र कूटिनता आदि जो उल्लेखनिय घटनाएँ होती है, जो आज की पिढी के लिए पथ प्रदर्शक भी होती है। अतः माथुरजी के नाटकों में आधुनिकता के साथ परम्परा के भी दर्शन होते है। प्रस्तुत आध्याय में आलोचनाटकों में प्रतिबिम्बित परम्परा का अध्ययन करना हमारा उध्दिष्ट है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत आध्याय के हम निम्नलिखित शीर्षकों में बाँट सकते है-

1) सामाजिक परिप्रेक्ष्य

2) राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

3) आर्थिक परिप्रेक्ष्य

4) धार्मिक परिप्रेक्ष्य

~~5) आचार नीति~~

सामाजिक परिप्रेक्ष्य

1) दरि... श्रमिक-शिल्पी

जगदीशचन्द्र माथुरजी का जन्म ही मध्यवर्गीय समाज मे हुआ था इसी कारण उन्होन इस माज की व्यवस्था का दखा था, भोगा था, उसी भोगे हुए यथार्थ हो माथुरजी ने आपने नाट्य-कृतियों मे सामाजिक जीवन की झाँकियों के रूप मे चित्रित किया है। "कोणार्क" नाट्य-कृति द्वारा उन्होंने शिल्पि और मजदूर समाज जीवन का वर्णन किया है। जो अन्याय, आत्याचार, सहते हुए अपने कार्य मे तत्पर रहते है। आत्याचार के प्रति, मनमे उठी विद्रोही भावना को व दबाते हुए अन्याय सहते है फिर भी अपने राजा तथा देश के प्रति समर्पित भावना रखते है। "कोणार्क" नाट्य-कृति में वस्तुतः अन्याय और आत्याचार में दब हुए समाज का वर्णन दिखाई पडता है, जो धर्मपद द्वारा अंकित किया गया है। धर्मपद के निम्नलिखित वार्तालाप से यह बात अधिक स्पष्ट होती है —— "झुरमुट की ओट मे चहकनेवाले पक्षी का स्वर सर्वथा हर्षगान ही नही होता। आपको क्या मालुम कि उस जय जयकार के पीछे ... हाहाकार चुपचाप सिसक रहा था।"[3] और " दव य उनकी बाते है जा बोल नही

सकते।"[4] इस प्रकार नाटककार ने कोणार्क नाटक मे सहनशील वृत्ति के समाज का वर्णन किया है जिसके अन्तर्गत जीनेवाला समाज अन्याय और आत्याचार सहन करने के अधिन बन गया है, अन्यास संहन करने की परम्परा जो उत्तराधिकार में आनेवाले पीढी को मिलता है। अतः समाज की प्रवृत्ति अति प्राचिन काल से चली आई है। इसी सामाजिक मनावृत्ति का चित्रण माथुरजी ने "कोणार्क" नाटयकृति में यथोचित उतारा है।

2) साम्प्रदायिक संघर्ष

अनुभूति और कल्पना के साथ सामाजिक अन्तर्वस्तु मे युगीन सन्दर्भ को उभारने मे माथुरजी के नाटका की कथावस्तु एक निश्चित स्वरूप प्राप्त करती हुई प्राचीन विचारों से निरंतर बहती है। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में "शारदीया" नाटक का महत्त्व पारम्पारिकता की दृष्टि से भी है। वस्तुतः इसके अन्तर्गत हिन्दू-मुस्लिम इन दो साम्प्रदायीक घटकों के विघटन की ओर नाटककारने संकेत किया है। क्योकि तत्कालिन समय हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरो पर धार्मिक आघात करते थे, एक-दूसरों सामाजिक हक छिनने की काशीश करत थ। हर समय वे दोनो साम्प्रदाय एक दूसरों को अपमानीत करते थ। इसका सकेत नाटककारने दिया है। नाटक में नरसिहराव के माध्यम से "घोषणा"[5] आँका जो चित्र प्रस्तुंत किया है, वह उसी का ही संकेत देता है। जिसस यह स्पष्ट होता है कि हिन्दू और मुस्लिम इन दो साम्प्रदायों मे अन्तरीक सघर्ष के कारण सामाजिक विघटन हुआ था और समाज मे अशांती का राज चला था, उसका परीणाम लडाई द्वारा स्पष्ट होता है। इस तरह हिन्दू और मुसलमान आपनी प्राचीन रूढियो के अनुसार साम्प्रदायिक सघर्ष में परिणत थे।

3) वर्णाश्रम व्यवस्था

"पहला राजा" नाटक मे भी माथुरजी ने पुरातन वर्ण व्यवस्थापर प्रकाश डाला है। नाटककारने नाटक क प्रारम्भ में ही आर्य-अनार्य भेद को संकेतीत किया है। आर्य अपने आप का उच्चकुलीन समजते है, और अनार्यो को निम्नजाति के मानते है। "वेन वध" प्रसंग में यह बात स्पष्ट की गयी है।

नाटककारने शुक्राचार्य के माध्यमसे यह दिखाया है कि ब्रम्हावर्त के मुनि और ब्राम्हण जनता के नेता है और शासक के "पथ प्रदर्शक"।[6] इस नाटक में यह भी दिखाया है कि शासक क्षत्रिय वर्ण का होना चाहिए इसलिए शुक्राचार्य, गर्ग, मुनि आदि पृथु को पहला राज घोषित करते है। इसम ब्राम्हण और क्षत्रिय वर्णविभाजन क साथ साथ दस्युओं क जीवन पर भी प्रकाश डाला है। उर्वी

को "दस्युकन्या"[7] मानकर उसकी उपेक्षा नाटक के प्रारम्भ में ही की है, कवष को जंघा पुत्र कहकर उसको निम्न जाति का ठहराया गया है। इतनाही नही दस्यु और आर्यतर लोगा का जीवन साम्प्रदायीकता के कारण उपक्षित रहा है। उच्चवर्ण के लोग विशेषत: ब्राम्हण उन्हे परेशान करते दिखाई पडते है। भृगुवंश और अत्रयवंश के नेता आर्यतर लोगां की मदत करना नही चाहत, बांध बांधने की योजना अपूर्ण होने का एक कारण साम्प्रदायिक संघर्ष भी माना जा सकता है क्योंकि उस योजना में जब पृथु कवष की मदत के लिए जाता है तो उसे ऋषि मुनियाद्वारा मदत नही दि जाती इस प्रकार प्राचीन वर्णव्यवस्था और उच-निच जो संघर्ष माथुरजी ने यहाँ दिखाया है वह मूलत: साम्प्रदायी संघर्ष ही है।

"दशरथनन्दन" नाटक मे भी साम्प्रदायिकता का वर्णन वर्णाश्रम व्यवस्था के रूप में नाटकाकारने किया है। तुलसीदास के रामचरितमानस (बालकाण्ड) के आधारपर वर्णव्यवस्था का पारम्पारिक चित्रण किया है। इस नाटक मे परशुराम, बसिष्ठ आदि को गुरु का स्थान दिया गया है और उनकी आज्ञा को शिरसांवध माना गया है। "पुत्रोष्टि यज्ञ" में वशिष्ट का पौरोहित्य वर्णाश्रम धर्म का पारम्पारिक वर्णन है, जिस हम प्राचीन साम्प्रदायिकता भी कह सकते है, क्योकि उसमें गुरु वशिष्ट के द्वारा क्षत्रियों के कर्तव्यां का उल्लेख किया है। वे कहते है कि क्षत्रियों का कर्तव्य यह है कि मुनिया के आश्रमोपर होनेवाल आसुरों के आत्याचार को रोकना जैसे कि "राजन पिता के मोह को अलंकार समझिये कवच नही। आप क्षत्रिय है और आपका कर्तव्य है कि मुनियों के आश्रमां पर असुरों का जो आत्याचार हो रहा है, उसे बंद करने के लिए सत्वर समर्थ उपाय कीजिये।"[9] इस तरह माथुरजी ने दशरथनन्दन नाटक में भी वर्णाषम व्यवस्थापर आधारीत सामाजिकता का वर्णन किया है।

4) अधूरे बल्कि अटूट प्रेमसम्बन्ध

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजीने "कोणार्क" की कथा सगठन मे आचार्य विशु और सारिका के प्रेम प्रसंग की अटखेलियांका वर्णन किया है, मगर उसके लिए नाटककारने साहिका को रंगमंचपर नही लाया किन्तु सौम्यश्रिदत्त के द्वारा सूर्य और कुंती की अपूर्ण प्रेम कहानी सुनकर आचार्य विशु के मानसबिम्ब पर उसकी प्रेयसी सारिका की मूर्ति प्रतिबिम्बित होती है। अत: आचार्य विशु और सारिका प्रेम प्रसग आचार्य विशु की याद है जिसे नाटय-विधा मे फलैश-बॅक कहते है। उनकी यह प्रम-कहानी प्राचीनता से आजतक चले आए प्रेमी-युगलों की तरह अधुरी-प्रेमकहानी ही है। जिसके अधूरेपन का महत्त्वपूर्ण कारण सामाजिक परिप्रेक्ष्य है जो आचार्य विशु के इस वार्तालाप से स्पष्ट होता है, देखिए- "जब मुझे ज्ञात हुआ कि वह माँ बननेवाली है तो कुल और कुटूंब के भय ने मुझे ग्रस लिया। नदी पर बढती साँझ की तरह उस भय की छाया मेरी बुध्दी पर छा गयी। और मै भाग आया, सारिका और

उसके अंज्ञात संताने से दूर-बहुत दूर भुवनेश्वर में देव-मंदिर की छाया में -- कला के आँचल में अपना मुँह छिपाने।"[10] इसी कुल और कुटुंब तथा सामाजिक रीति-रिवाजों के डर से अपने अमर प्रेम के प्रति मुँह छुपानेवाले कई प्रेमी प्राचीन युग से चले आये है, और प्रेम की आधूरी कहानी की परम्परा में अपना नाम छोड गये है। जो सामाजिक बन्धनों के कारण असफल होते हुए एक दुसरे के लिए कुछ भी नही कर सकते सिर्फ हताश बनकर सोचते है कि "भव्य मंदिरों को बनानेवाले मैं ये हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोपडी भी न बना सके।"[11] किन्तु आचार्य विशु और सारिका की यह प्रेम-कहानी प्राचीनकाल से आजतक चले आये प्रेमी युगलों की भाँति अधूरी होकर भी उनका प्रेम पारम्पारिक प्रेमियों की तरह अटूट है क्योंकि आचार्य विशु सारिका से हुए उसी अटूट प्रेम के कारण ही "कोणार्क" जैसा महान शिल्प बनाता है, अपने प्रेयसी से अलग होनेपर भी आचार्य विशु के मन में सारिका के प्रति अटूट प्रेम था। सौम्यश्री के इन शब्दों में वह बात स्पष्ट होती है-- "वियोग के बादलों पर सूर्य की किरनें बिखरी और कला का सतरंगी इन्द्रधनुष्य सारे उत्कल पर छा गया।"[12] इस तरह प्राचीनता की यह प्रेम-परम्परा आचार्य विशु और सारिका के अटूट बल्कि अधूरे प्रेम कहानी में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

"कोणार्क" के भाँति "शारदीया" नाटक में भी अनिंद्य सुन्दरी बायजाबाई और नरसिंहराव के अटूट बल्कि अधूरे प्रेम कहानी का वर्णन नाटककारने किया है। वैसे तो बायजाबाई और नरसिहंराव का प्रेम एक सच्चा प्रेम है। यहाँ नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने उनके प्रेम को पारम्पारिक संस्कार के रूप में चित्रित किया है क्योंकि प्रेम की परम्परा ही ऐसी है कि अगर एक बार किसी से प्रेम हो जाए तो वह कभी टूटता ही नही, यह बात नाटकारने यहाँ दर्शायी है। बायजाबाई को पत्नि के रूप में पाने के लिए नरसिहंराव सैनिक होकर भी एक कलाकार बन जाता है। पैसा कमाता है, लेकिन बायजाबाई से शादी नही कर पाता बल्कि बंदिवास में ही आजीवन अपनी प्रेयसी की याद करते हुए जीवन बिताता है। इसके विपरीत बायजाबाई अपने पिता शर्जेराव घाटगे की जबरदस्ती के अनुसार दौलतराव सिंधिया से शादीशुदा होत जाती है। शादी होने पर भी उसके मन में नरसिहंराव की मूर्ति देवता के रूपमें स्थापित रहती है। इसी कारण कारावास में पडे अपने प्रियकर को छुडाने के लिए दौलतराव सिंधिया का आज्ञापत्र लेकर कारावास में पहुच जाती है। अपने प्रियतम को रिहा करने के लिए वह प्रयत्न करती है लेकिन नरसिहंराव उसकी बात नही मानता बल्कि अपने अटूट प्रेम को स्पष्ट करते हुए वह कहता है-- ".. मै यही रहूंगा, क्योंकि तुम यही हों। महारानी नहीं, बायजाबाई नहीं, लेकिन तुम। -- तुम, मेरी शारदीया। मेरी शारदीया--- तुम जो मेरी हो, हमेशा थी, हमेशा रहोगी।"[13] आखीर अपने उंगली में तुराब बनाकर बुनी हुई पाँचतोले की महिन साडी नरसिहंराव

बायजाबाई को प्रेम के रूप में अर्पित करता है। उस साडी को लेकर दु:खद अन्ताकरन से बायजाबाई अकेली ही वापस जाती है। यद्यपि बायजाबाई और नरसिंहराव की शादी नही हो सकती फिर भी उन दोनों को प्रेम अटूट रहता है। इस प्रकार नाटककारने नरसिंहराव और बायजाबाई के प्रेम को पारम्पारिक संस्कार के रूप में अभिव्यक्त किया है। किसी भी हालत में प्रेम टूटता नही बल्कि अधूरा होने के कारण विरह में और भी बढता जाता है शारदीया नाटक का अंत इस कथन का दयोतक ही है।

5) जीवनका प्रतिरूप : कला

"कोणार्क" नाटक में जगदीशचन्द्र माथुरजी ने शिल्पिकला का यथोचित वर्णन किया है। आचार्य विशु कोणार्क के प्रधान शिल्पि है। मूलत: आचार्य विशु के माध्यम से ही नाटककारने कला सम्बन्धि प्राचीनता से चले आये पारम्पारीक विचार व्यक्त किए है। जिसमें अपनी कला, कलाकार को स्वयं के तथा मानव जीवन का प्रतिबिम्ब लगती है, परम्परावादी विचारो की दृष्टि से उन कलाकारों के लिए "कला की पूर्ति चयन में है – छँटने में। जंगल में तरह-तरह के फूल, पौधे चाहे जहाँ उगे रहते है लेकिन उपवन में माली छाँट-छाँट कर सुन्दर और मनमोहक पौधों और वृक्षो को ही रखता है।"[14] यही कला सम्बन्धि विचार प्राचीन काल से चले आये हैं। उस कला के कलाकारों के लिए अपनी कला ही सब कुछ रहती, यहाँ तक कि वे अपने "जीवन का प्रतिबिम्ब"[15] भी अपनी कला में ढूँढते है और अपनी कला में हि वे अपना जीवन अंकित करते है। उनके लिए बाहर की दुनिया कुछ नही होती और न ही कभी उन्हे विद्रोह की वरणी कभी अच्छि लगती है? "कोणार्क" का प्रधान शिल्पि विशु इस बात का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस तरह नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने अपने नाटय-कृतियों में पारम्पारिक विचार दृष्टि जीनेवाले तथा चलानेवाले सामाजिक संरचना का वर्णन यथोचित रूप में रेखांकीत किया है, इसमें कोई संदेह नही है।

आ) राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

जगदीशचन्द्र माथुरजी ने अपनी नाटय-सृष्टि के लिए पारम्पारिक कथावस्तु के संगठन की कला से कथा-सृष्टि का चयन किया है, उसके लिए उन्होने इतिहास और प्राचीन किम्वदंतियों का आधार लिया है। जिसमें इतिहास की प्रतिबध्द शक्तियों के घात-आघात, राजनीति के अमानवीय वातावरण में मानवता की कराहें और कुछ करूण-कोमल पात्रों के अन्तर्मन की पीडा को परम्परा की परिधि में अतिशय भावुकता के साथ रेखांकित की है।

1) अत्याचार और षड्यंत्र

माथुरजीने अपनी सफल नाटय-कृति "कोणार्क" में भी राजनीति के पारम्पारिक षड्यंत्र स्पष्ट किए है, जो भ्रष्टाचार, अन्याय अत्याचार के साथ-साथ विश्वासघातकी चक्रव्युह को स्पष्ट करते है। "कोणार्क" में चित्रित कलिंग राजतंत्र तत्कालीन महामात्य राजराज चालुक्य के पारम्पारिक षड्यंत्र युक्त राजनीति से ग्रासित था। वह सारे उत्कल प्रजा पर अत्याचार कर रहा था, जिसमें प्रायः शिल्पीगन पिसते जा रहे थे। उसके द्वारा शिल्पियों का पुरस्कार बंद किया था और उनकी जमीन भी छीन ली थी और गरीब शिल्पि जनता उसका अत्याचार चुप-चाप सह रही थी। यही राजनैतिक परम्परा प्राचीणतासे चली आयी है जो इस नाटय कृति में चित्रित की गयी है। इस राजनीति के शस्त्र से महामात्य शिल्पि जनता पर आत्याचार ही नही तो अपने हुकूमों के गुलाम बनाना चाहता था, जिसमें सजा देना उनका स्वयं का निर्णय रहता था। जैसे - "सुन लो और कान खोलकर सुन लो। आज से एक सप्ताह के अन्दर यदि कोणार्क देवालय पूरा न हुआ तो तुम लोगों के हाथ काट दिए जायेंगे।"[16] वास्तव में राजनीतिक क्षेत्र की यह पूर्व-परम्परा ही है कि राजा की पूर्वानुमति न लेते हुए भी तत्कालिन महामात्य गरीब प्रजा को सजा देते थे और उन्हे परेशान करते थे। भ्रष्टाचार, अन्याय, अत्याचार यह राजनीतिक शस्त्र है किन्तु इससे भी और एक भयंकर और सशक्त शस्त्र राजनीति की परम्परा में हमे दिखाई पडता है और वह है षड्यंत्र"[17] या विश्वासघात "कोणार्क" में महामात्य चालुक्य ने उस शस्त्र का भी प्रयोग किया है। उससे वह उडीसा का तत्कालीन राजा नरसिंहदेव की हत्या करना चाहता है और स्वयं उडीसा का प्रजापति बनना चाहता है। अपने स्वप्न को साकार करणे के लिए महामात्य अपने उत्कल नरेश के विश्वास को अपनी कुटनीति में लौटता है और उससे वह विश्वासघात करते हुए उत्कल नरेश को निर्बल और निस्साहय बना देता है।[18]

अतः इस तरह अपने प्राचीन राज्य व्यवस्था में से चली आई अत्याचारी अन्यायी और षडयंत्र के साथ विश्वासघात की पारम्पारिक राजनीति को नाटककारने "कोणार्क" में रेखाकींत किया है।

2) कूट नीति और विश्वासघात

"शारदीया" में भी राजनैतिक क्षेत्र परम्परा के बलपर ही खडा है। शर्जेराव उर्फ सखाराम घाटगे की अपनी कुटिलता, कूटनीति और दाँव-पेचों की यह कहानी रोचक होते हुए भी अत्यन्त जटिल और सिर चकरा देनेवाली है।"[19] इसी तरह धूर्त शर्जेराव घाटगे के मन में फन फैलाये बैठा सर्प प्राचीन राजनीतिक तंत्र का प्रतिक है। वह अपने स्वार्थ के राजनैतिक तंत्र के दाँव-पेंच पर स्वयं की बेटी

को लगा देता है। हमारी प्राचीन परम्परा में यह स्पष्ट हुआ है कि राजनैतिक क्षेत्र में लोग अपने औरत को भी सौदा करने के लिए रखते है, यही परम्परा शर्जेराव घाटगे ने आगे चलायी, अपने बेटी का सौदा किया। अपने स्वार्थ के लिए, यही राजनीति की परम्परा है। साथ ही नरसिंहराव के बारें में दौलतराव सिंधिया के सामने चुगलखोरी करना भी परम्परागत विचारों की सृष्टि निर्माण करता है, जिसमें विश्वास के बदले द्वेष निर्माण करना प्रमुख ध्येय होता है। जैसे जिस भेदिये को आप लोगों ने इतना लगाम दे रखी है, उससे सावधान रहना।"[20] इस में शर्जेराव घाटगे के अविश्वास के षड्यंत्र का संकेत मिलता है साथ ही उसकी चुगल्खोरी। जिसके कारण बायजाबाई के जीवन की आहुति दी जाती है और नरसिंहराव को अपनी जीवन अंधेर कोठडी में जीना पडता है। साथ ही दौलतराव सिंधिया के दोनो सौतेली माताओं को निराधार किया जाता है, किन्तु राजनीति की परम्परा तब स्पष्ट रूप में दिखाई देती है जब शर्जेराव घाटगे अपने ही भेदीयोंद्वारा विठ्ठल और परशुराम भाऊपर गोली बार करके नरसिहराव के प्रति सिंधिया के मनमें घृणा और अविश्वास निर्माण करता है। शर्जेराव की इस कूटील चाल का पता जिन्सेवाले और नरसिंहराव के वार्तालाप से स्पष्ट होत है। निम्नलिखित वार्तालाप देखीए —

नरसिंह : आपका मतलब – – – आपका – – –

जिन्से : मेरा नही सिन्धिया महाराज का ख्याल है कि तुम्हारे इशारे से ही वह गोलियों की बौछार आई और –––

नरसिंह : झूठ ।––– सरदार जिन्सेवाले, यह सरासर झूठ है। – – – मुझे नही मालूम कि गोलियों की बौछार क्यों और कहाँ आई, लेकिन मेरे इशारे से? – – – उफ – – यह झूठ है। यह मिथ्यारोप है। – – – क्या आप इसपर यकीन कर सकते है?

जिन्से : नहीं, मैने इसपर कभी यकीन नहीं किया ।

नरसिंह : और परशुराम भाऊ ?

जिन्से : उन्होने भी नहीं। ––– हम लोगों को कभी यकीन नही हुआ। लेकिन सिन्धिया महाराज तुम्हे आधा मुसलमान कहते है।[21]

अतः इस चुगलखोरी और विश्वासघात के पारम्पारिक शरा से नरसिंहराव को आजीवन कारावास की सजा दी जाती है क्योंकि घाटगेद्वारा किए हुए दुष्कर्म के कारण नरसिंहराव को राष्ट्रद्रोही समझा जाता है।

इस तरह राजनैतिक क्षेत्र का पारम्पारिक चित्र माथुरजी ने "शारदीया" में उतारा है जो हर युग में कुटिलता, कूटनीति, अविश्वास, चुगलखोरी, षड्यंत्र और शकुनीति युक्त शस्त्रों के

बलपर चलता है, सिर्फ चलानेवाले बदलते है, फिर भी हर युग की राजनीति में अपना- अपना एक शुक्राचार्य होता है यही सच है।

3) राजाओं की विलासिता

शारदीया के शर्जेराव घाटगे और दौलतराव सिंधिया दोनो भी ऐतिहासिक पात्र है, उनके राजदरबार का चित्र पारम्पारिक रुप में दिखाई देता है। इतिहास साक्षी है कि कभी-कभी कोई मामूली व्यक्ति अपनी राक्षसी महत्वाकांक्षा के कारण बडे-बडे राजाओं को अपनी चाल में फसाते है और उन राजाओं को विलासीता में डूबों देते है। शारदीया नाटक में यह स्पष्ट रूप से दिखाई पडता है क्योंकि शर्जेराव घाटगे अपने स्वार्थ के कारण इसी चाल से दौलतराव सिंधिया को विलासी बनाता है। उसके अंतपुर में नर्तकीयोंका नाचगाना होता है और उसके साथ शराब की एक से एक बोतले सिंधिया खाली करता है। दौलतराव सिंधिया की यह विलासिता और शराबीपन नाटककारने निम्नलिखित वार्तालाप द्वारा दिखाया है --

जिन्से : यह मै क्या देख रहा हूं, आलीजाह। —— यह नर्तकी और ये शराब के प्याले।——

सिंधिया : हा-हा-हा। एक ही सिक्का और दो रूख। एक ही शरीर और दो पोशाक। एक अपने महल में पहनता हूं और एक यहाँ।"[22]

यहाँ नाटककारने इतिहास के आधारपर शर्जेराव घाटगे को षड्यंत्रवादी के रूप में और दौलतराव सिंधिया को व्यसनाधीन राजा के रूप में परम्परा के अनुसार चित्रित किया है।

4) वर्णव्यवस्था और राजा का चुनाव

जगदीशचन्द्र माथुरजी के "पहला राजा" नाटक में भी राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में कुछ बाते पारम्पारिक रुपसे स्पष्ट हुई है। भारतीय परम्परा के अनुसार शुक्राचार्य, अत्रि, गर्ग आदि मुनि ब्राह्मण है, कवष जंघापुत्र अर्थात निषादपुत्र है और पृथु क्षत्रिय है। नाटककारने राजा के चुनाव के बारे में पारम्पारिक संकेत दिया है वह यह है कि ब्राहमावर्त के ऋषि मुनि स्वयं को ब्राह्मण समझते है। इसी कारण वे शासक बनना नही चाहते वे कहते है कि हम अपनी तपस्या और साधना के कारण शासक का पथ प्रदर्शन कर सकते है।[23] तथा अंतीम में वर्णव्यवस्था के आधारपर क्षत्रिय पृथु को पहला राजा घोषित करते है।

5) रामराज्याभिषेक

रघुकुलरीति नाटक में भी जगदीशचन्द्र माथुरजीने राम के राज्यभिषक का प्रसंग तुलसीदासकृत "रामचरितमानस" के आधारपर पारम्पारिक रूप में चित्रित किया है। जब दशरथ को

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY KOLHAPUR

अपने पके हुए बाल का ज्ञान होता है तब वे अपने सबसे बडे बेटे राम को राज के गद्दीपर बिठाना चाहते है। तो राम के राज्यभिषेक की तैयारी की जाती है। इतने में कैकेयी की दासी मन्थरा राणी कैकयी के कान फूंकती है जिसकी वजहसे दशरथ का रामराज्याभिषाक का स्वप्न साकारा नही होता। उत्ताराधिकार के रूप में राम राजा होने का अधिकार पाकर भी राजा नही बन पाता बल्कि सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह साल वनगमन करता है। रामराज्याभिषेक का यह प्रसंग "रघुकुलरीति" इस नाटक में पूर्ण रूप से पारम्पारिक है।

अतः इस प्रकार जगदीशचन्द्र माथुरजीने अपनी नाटय-सृष्टि मे पारम्पारिक गुण-अवगुणों के साथ राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का चित्राण किया है जो आज के राजनीति क्षेत्र में भी दिखाई पडता है।

आर्थिक परिप्रेक्ष्य

भारतीय परम्परा के अनुसार चार पुरूषार्थ माने गए है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें संदेह नही कि इन चार पुरुषार्थों में मानव जीवन की समग्राता परिव्याप्त है। मानव जीवनमें अर्थ का महत्त्व सर्वोपरी है। मानव के भौतिक जीवन का एक मूल आधार अर्थ है। अर्थ मानव जीवन की उन्नती का साधन है।

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी के नाटकों में अर्थ पर कुछ विचार किए गए है। जो परम्परा के नींव पर खडे है। "कोणार्क" में नाटककारने यह दिखाया है कि तत्कालिन शिल्पि एक उत्कृष्ट कलाकार है, वे अपनी कला में लीन हो जाते है, परन्तु उन्हे भी अर्थपर निर्भर रहना पडता है क्योंकि उनका भी अपना जीवन यापन है, गृह-गृहस्थी है। "कोणार्क" में नाटककारने राज्याश्रित शिल्पियों का जीवन चित्रित किया है। कोणार्क मंदिर का प्रधान शिल्पि विशु उच्च कोटि का कलाकार है और उसे राजदरबार से शिल्प के बदले में आर्थिक सहायता मिलती है। कभी-कभी अच्छा कार्य करने पर पुरस्कार के रूपमे कुछ सुवर्णमुद्राएँ मिलती थी। साधारण शिल्पिजनता को भी राजकोश से अर्थ प्राप्ति होती थी।

"शारदीया" नाटक में भी नाटककारने यह दिखाया है कि कलावंतो का जीवन एक अलग जीवन होता है। हैदराबाद के कलाकार बुनाई का काम करते थे, उनका बुनाई का काम इतना महिन था कि वजन में पांचतोले की साडी भी वे बुनते थे। "शारदीया" नाटक में माथुरजीने नरसिंहराव के पात्र की काल्पनिक सृष्टि की है। वह नरसिंहराव जब बायजाबाई से शादी की इच्छा व्यक्त करता है तो बायजाबाई की माँ उसे सर्वप्रथम कुछ घर की पूँजी तैयार करने की सलाह देती है।

SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

क्योंकि अर्थ के बीना गृहस्थी जीवन नहीं चलाया जा सकता। यही संकेत यहाँ मीलता है। तत्पश्चात नरसिंहराव बुनाई की काम में लग जाता है और आवश्यक पूंजी प्राप्त करता है।

शारदीया में यह भी दर्शाया गया है कि दौलतराव सिंधिया की दो विमाताएँ है। उन सौतेली माताओं को भी कुछ आर्थिक मदद स्वयं दौलतराव सिंधिया को करनी पडती है। दौलतराव सिंधिया भी उन्हें आर्थिक सहायता करना चाहता है किन्तु राजनैतिक झंझटों में पडा सिंधिया उन्हे पत्र द्वारा यह बता देता है कि आपने अपनी खर्च में काँट-छाँट करनी चाहिए। दौलतराव सिंधिया पत्र में लिखता है - "आप दोनो जानती ही है कि मुझे गोद लने पर स्वर्गीय पिताजी ने आप दोनों विमाताओं के लिए मेरी जिम्मेदारी का कोई जिक्र नहीं किया था। फिर भी मैंन बराबर आप दोना का ख्याल रखा है। परन्तु राज्य-संचालन की कठिनाइयों को समझकर आप दोनों को अपने खर्च कम करने चाहिए। निजाम से युद्ध के बाद मुमकिन है, हमारी कठिनाइयाँ कम हो जाय।"[25] इसी प्रकार "शारदीया" नाटक में "चौथ" का भी उल्लेख किया गया है - "निजाम की चौथ में मेरा सबसे जादा भाग होना चाहिए"[26] ऐसा दौलतराव सिंधिया कहते है। यहाँ "चौथ" की कल्पना तत्कालीन या मध्ययुगीन कर व्यवस्था का ही एक प्रकार है।

दौलतराव सिंधिया जहाँ अपनी विमाताओ को खर्च कम करने की सलाह पत्र द्वारा देता है वहाँ स्वयं अपना राजकोश नृत्य-गान अफिम और शराब म खाली करता है। नाटककारने तत्कालीन विवाह समारोह का उल्लेख भी किया है। उस समय सामंतीशाही के राजालोक अपनी शादी में फिजुल खर्च करते थे। इसका संकेत दौलतराव सिंधिया के इस वक्तव्य से स्पष्ट होता है - "विवाहोत्सव इस शानबान से हो जैसा पूना-नगरवासियों ने आज तक कभी देखा ही न हो।"[27] इस प्रकार उस समय व्यक्तिगत जीवन के लिए प्रजा का पैसा फिजूल खर्च के रूप में खर्च किया जाता था। जो एक प्राचीन परम्परा ही है।

"पहला राजा" नाटक में आर्थिक परिप्रेक्ष्य में पारम्परिक विचारों को विशेष स्थान नहीं दिया है तथापि नाटक में उल्लेखित एक प्रसंग से इतना स्पष्ट होता है कि आर्येतर लोगों का आर्थिक शोषण आर्य लोग करते थे। आर्येतर लोगो को योग्य मजदूरी नहीं मिलती थी।[28] वास्तव में "पहला राजा" नाटक में आर्थिक समस्या को आधुनिक दृष्टि से ही चित्रित किया है। जिसका विवचन आगे किया गया है।

अतः जगदीशचन्द्र माथुरजी ने अपनी नाटय-कृतियों मे जो आर्थिक परिप्रेक्ष्य के रूप में जो विचार व्यक्त किए है उसमें परम्परा का अंश दिखाई पडता है। मजदूरा के मजदूरी म काँट-छाँट करना या उनकी मजदूरी कम करना, तथा शासक लोगो का फिजुल खर्च करना आदि बाते प्राचीनता से चली आयी है, उसी का ही वर्णन माथुरजीने किया है।

धार्मिक परिप्रेक्ष्य –

नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने "शारदीया" नाटक में यह स्पष्ट कर दिया है कि खर्दा का युद्ध निजाम और मराठा के बीच होता है। अर्थात यह युद्ध हिन्दु-मुस्लिम वैमनस्य का ही द्योतक है। आमतौर पर यही धारणा रही है कि मुसलमान बाहर से आकर हिन्दुस्तान में रह गए है और हिन्दु इस देश के ही मूल निवासी है। अतः इतिहास यह साक्ष देता है कि हिन्दु और मुसलमान में मध्ययुगीन काल से आजतक जो लडाईयाँ हुई है वह मुख्यतः धर्म के नामपर ही हुई है। लेकिन "शारदीया" नाटक में यह भी उल्लेख किया गया है कि हिन्दु राजाओं के सैनिकों में मुसलमानों की भरती भी दिखाई पडती है, हिन्दु राज में सैकडो मुसलमान घराने चैन की जिन्दगी बिताते है।[29] नाट्य-कृति में नरसिंहराव मुसलमान कलाकारों को लेकर भेदिया के रूप में निजाम के खिलाफ खबरे हिन्दु सैनिकों तक पहुंचाता है, उस युद्ध मे भाग लेने वाले सैन्य नक्कल और भांड मुसलमान ही है।[30] नरसिंहराव फडके को यह भी बताता है कि हिन्दुओं के फौज में अनेक तापची रिसालेदार मुसलमान ही है जिनकी ईमानदारी पर हमें गौरव है। इस प्रकार हम देख सकते है कि यद्यपि हिन्दु-मुसलमानों में धर्म के नाम पर युद्ध छिड जाते है, जिसमें मुसलमान भी हिन्दुओं की सहायता करते है जो अपनी प्राचीन परम्परा है।

"पहला राजा" नाटक मे नाटककार ने भूचण्डि का की पूजा के माध्यम से धार्मिक अनुष्ठान पर रूढिगत विचारों की दृष्टि से प्रकाश डाला है। वास्तव में भूचण्डि की पूजा एक प्रकार से अंधश्रद्धा ही है। नाटककार ने इस नाटक मे यह दर्शाया है कि मोहेंजोदाडो संस्कृति मे भूचण्डि की पूजा की जाती थी। यह पूजा मुख्यतः पानी की प्राप्ति के लिए दस्यु या अनार्य लोग करते थे। भूचण्डि की पूजा के समय "दवी चढने की"[31] कल्पना का भी उल्लेख किया है जिसमें अंधश्रद्धा युक्त परम्परा स्पष्ट होती है।

"पहला राजा" में नाटककार ने यज्ञ-होम-हवन आदि का प्रासगिक उल्लेख करके पारम्पारिक कर्मकाण्ड की ओर सकेत किया है। जिसका वर्णन वेन के शव मन्थन प्रसग में दिखाई पडता है, तथा मंत्र युक्त "कुशा की रस्सी" उसका एक उदाहरण है। इस कर्मकाण्ड के सर्व प्रमुख शुक्राचार्य ही है।[32] इस नाटक में नाटककार ने नटी और सूत्रधार के माध्यम से शिव-पार्वती कथन को अंकित करके धर्म की अवश्यकता पर प्रकाश डाला है। मनुष्य मनुष्य होकर भी पशु है। मनुष्य में पशु का जो रूप विद्यमान रहता है, वह हिंसाचारी रक्तपात करनेवाला तथा सब को दुःख देनेवाला होता है। अतः मनुष्य में स्थित पशु को रोकने के लिए धर्म की आवश्यकता होती है। नटी के शब्दों में – "धर्म मनुष्यरूपी जानवर के लिए एक लगाम है।"[33] इस तरह नाटककार ने "पहला राजा" नाटक में धार्मिक कृत्यों का जो वर्णन किया है वह मूलतः पारम्पारिक धर्म-कृतियाँ ही है। जिसका पहले अंधरूढि और अंधश्रद्धा के रूप में प्रस्तुतिकरण हुआ है।

जगदीशचन्द्र माथुरजी की "दशरथनन्दन" और "रघुकुलरीति" नाट्य-कृतियाँ वास्तव में तुलसीदासकृत "रामचरितमानस" के कुछ विशिष्ट अंशो के नाट्य-रूपांतर ही है। इन दो नाटको को माथुरजी के मौलिक नाटक नही कहा जा सकता। कम से कम कथा घटना की दृष्टि से "दशरथनन्दन" नाटक में नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी ने रामजन्म से राम-सीता विवाह तक के प्रसंग को तुलसीदास के "रामचरितमानस" में आए विचारों को ही सवादात्मक शैली मे चित्रित किया है और "रघुकुलरीति" नाटक म रामराज्याभिषेक की तैयारी, रामवनवास का निर्णय और अंत में राम के वनगमन तक की घटनाएँ वर्णित है। जिसका मूलाधार तुलसीदास रचित "रामचरितामानस" ही है। अत: "दशरथनन्दन" और "रघुकुलरीति" नाटक जगदीशचन्द्र माथुरजी के मौलिक नाटक नहीं है। डॉ. नरनारायण राय ने भी इन दो नाटकों को नाट्य-रूपान्तर या नाटयांतर ही कहा है।[34] कथा की नाट्य-शिल्प की दृष्टि से इन दो नाटको म कुछ नवीनता दिखाई पडती है जिसका सकेत "नव नाट्य शिल्प" के अन्तर्गत किया है।

आचार नीति –

मानव जीवन में आचार को विशेष महत्त्व है। मनुस्मृति में कहा गया है कि आचार ही श्रेष्ठ है।[35] जगदीशचन्द्र माथुरजी ने भी रघुकुलरीति नाटक म मुख्यत: रामायण कालिन आचार नीति को ही शब्दांकित किया है। कुछ रीतियो का उल्लेख इस प्रकार किया गया है –

1) राज्य का उत्तराधिकारी – प्रस्तुत नाटक में दशरथ के चार पुत्रों में सबसे बडे पुत्र राम को राजा दशरथ के बुढापे में राजा के उत्तराधिकारी के रूप में रघुकुल परम्परा के अनुसार राम को निर्धारित किया जाता है। तदनुसार राज्याभिषेक की तैयारी की जाती है लेकिन उस समय महारानी कैकयी विघ्न डालती है जिसकी वजह स रामराज्याभिषेक नहीं हो सकता।

2) वचन की पूर्ति – वचन की पूर्ति क बारे में नाटक में दो प्रसग आए है। अ) राजा दशरथ ने महारानी कैकयी को दो वर माँगने की इजाजत दि थी। उसका उपयोग कैकयी राम राज्याभिषेक की तैयारी क समय करती है। कैकयी एक वर से अपने पुत्र भरत को राजगददीपर बिठाने का वर माँगती है और राम को वनवास मे जाने के लिए वनगमन का दुसरा वर माँगती है। दोनो वर की पूर्ति राजा दशरथ अत्यन्त दु:खद रूप से करता है।[36] आ) वचनपूर्ति का दूसरा उदाहरण है राम। दशरथ के आदश से राम वनगमन की आज्ञा मानता है और पिता के आदश की पूर्ति करता है।[37] इस प्रकार नाटककार ने "रघुकुलरीति" नाटक में परम्परागत रघुकुलरीति को चित्रित किया है। यह परम्परागत रीति स्वयं राजा दशरथ के शब्दों मे दखी जा सकती है –

"रघुकुलरीति सदा चलि आई
प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई।"[38]

निष्कर्ष –

* वास्तव मे जगदीशचन्द्र माथुरजी स्वातन्त्र्योत्तर प्रयोगशील नाटककार है। उपर्युक्त विवेचन से यह कहा जा सकता है कि नाटककार जगदीशचन्द्र माथुरजी के आलोच्य नाटकों म "परम्परा" को सीमित रूप मे चित्रित किया गया है।
* जगदीशचन्द्र माथुरजी ने आलोच्य नाटकों में सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक धार्मिक परिप्रेक्ष्य मे "परम्परा" का जो चित्र प्रस्तुत किया है वह कवल आधार या पृष्ठभूमि की रूप में ही प्रस्तुत किया है।
* "परम्परा" के बिना "आधुनिकता" को विशद रूप में चित्रित करना असम्भव है। अतः नाटककार ने विवेचित नाटकों में अत्यल्प मात्रा में परम्परा को चित्रित किया है।

  माथुरजी का नाटक लिखने का मूल उद्देश्य कथ्य और शिल्प में नये प्रयोग करना है। अतः उसमे "परम्परा" का संक्षिप्त चित्र स्वाभाविक ही है।
* माथुरजी के विवेचित नाटकों से यह भी स्पष्ट है कि उन्होंनें "परम्परा" की नीव पर "आधुनिकता" का भव्य भवन खडा किया है जो नाटककार की सर्वप्रमुख विशेषता है। अतः अगले अध्याय में "आधुनिकता" के ही परिचायक है, प्रयोगशील नाटककार की प्रयोगधर्मिता के सूचक है।

* * *

संदर्भ सूची

1. The Sacred wood - T.S Eliot P.49 Ed 1960
"This historical sense which is a sense of the timeless as well as at the temporal and of the timeless and of the temporal together is what makes a writer traditional."
2. रघुकुलरीति – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.3, संस्क.1985
3. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.34 च. संस्क. 1986
4. वहीं – पृ. 51
5. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 44, संस्क.1975
6. पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.24, संस्क.1976
7. वहीं – पृ. 52
8. दशरथनन्दन – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.10,11, संस्क.
9. वहीं – पृ. 37
10. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ. 32 च., संस्क.1986
11. वहीं – पृ. 33
12 वही – पृ.32
13. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ 114 संस्क 1975
14. कोणार्क – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.34,35 च संस्क 1986
15. वही – पृ 34
16 वही – पृ. 39
17. वहीं – पृ 55
18. वहीं – पृ 55,56
19 शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर पृ. 15 संस्क 1975
20. वहीं – पृ 48
21. वहीं – पृ. 82,83
22. वहीं – पृ. 94

23 पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ 2[illegible] संस्क 1976

24. शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर पृ. 24 संस्क 1975

25 वही – पृ 52

26. वही – पृ. 53

27 वही – पृ. 93

28 पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ 92, सस्क. 1976

29 शारदीया – जगदीशचन्द्र माथुर, पृ.30 सस्क.1975

30. वही – पृ 38

31 पहला राजा – जगदीशचन्द्र माथुर पृ.77, संस्क 1976

32. वही – पृ 113

33. वही – पृ 41

34. जगदीशचन्द्र माथुर की नाटय–सृष्टि – डॉ नरनारायण राय पृ.111 115 सस्क.

35 मनुस्मृति – हरगोविन्द शास्त्री (सम्पा) पृ 32 संस्क.वि.स 2027
"आचारः परमो धर्माः" (मनुस्मृति 1/108)

36 रघुकुलरीति – जगदीशचन्द्र माथुर पृ. 61, संस्क 1987

37. वही – पृ. 73

38. वही – पृ. 67